

समाज विकासमाला

कस्तूरबा गांधी

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

समाज-विकास-माला : ३३

कस्तूरबा गांधी

गांधीजी के भाव-भरे उद्गारों का संग्रह

संग्राहक
विष्णु प्रभाकर

सम्पादक
यशपाल जैन

१९५७

सस्ता साहित्य मंडल-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

दूसरी बार : १९५७
मूल्य
छः आना

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स
दिल्ली

समाज-विकास-माला

हमारे देश के सामने आज सबसे बड़ी समस्या करोड़ों आदमियों की शिक्षा की है। इस दिशा में सरकार की ओर से यदि कुछ कोशिश हो रही है तो वही काफी नहीं है। यह बड़ा काम सबकी सहायता के बिना पार नहीं पड़ सकेगा।

बालकों तथा प्रौढ़ों की पढ़ाई की तरफ जबसे ध्यान गया है, ऐसी किताबों की मांग बढ़ गई है, जो बहुत ही आसान हों, जिनके विषय रोचक हों, जिनकी भाषा मुहावरेदार और बोलचाल की हो और जो मोटे टाइप में बढ़िया छपी हों।

यह पुस्तक-माला इन्हीं बातों को सामने रखकर निकाली गई है। इसमें कई पुस्तकें निकल चुकी हैं। इन सबकी भाषा बड़ी आसान है। विषयों का चुनाव बड़ी सावधानी से किया गया है। छपाई-सफाई के बारे में भी विशेष ध्यान रक्खा गया है। हर किताब में चित्र भी देने की कोशिश की है।

यदि पुस्तकों की भाषा, शैली, विषय, और छपाई में किसी सुधार की गुंजाइश मालूम हो तो उसकी सूचना निस्संकोच देनें की कृपा करें।

दूसरा संस्करण

बड़े हर्ष की बात है कि इस पुस्तक का दूसरा संस्करण इतनी जल्दी प्रकाशित हो रहा है। इस माला की सभी पुस्तकें पाठकों को पसंद आ रही हैं, इससे हमें बड़ा आनंद होता है। हमें विश्वास है कि इन सामयिक और उपयोगी पुस्तकों को पाठक चाव से पढ़ेंगे और इन के प्रचार में हाथ बटायंगे।

—मंत्री

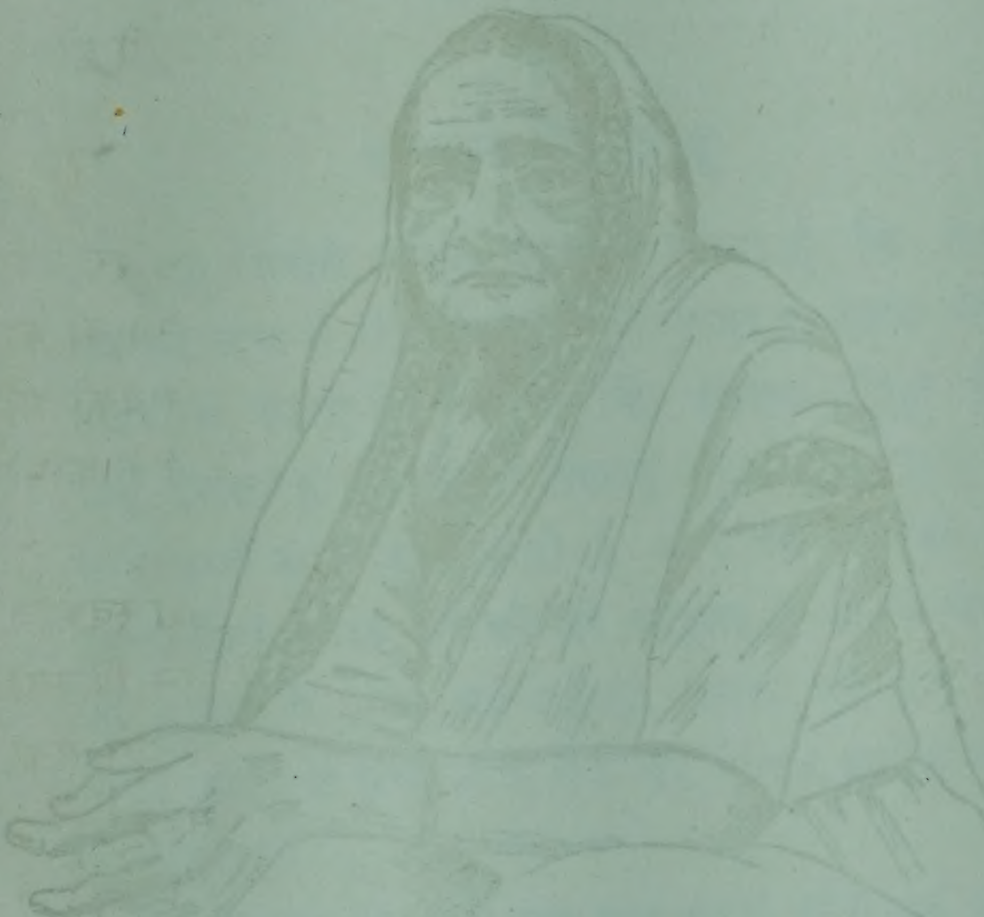
पाठकों से

हमारे देश में शायद ही कोई ऐसा आदमी होगा, जिसने कस्तूरबा गांधी का नाम न सुना हो। वह अधिक पढ़ी-लिखी नहीं थीं, लेकिन दूसरों की सेवा करके उन्होंने अपने लिए इतना प्रेम और आदर पैदा कर लिया कि वह सारे देश की 'बा' बन गईं। बा का मतलब होता है मां और वह सचमुच ही सबकी मां थीं। बा और बापू ६२ बरस साथ रहे। बापू के कामों में बा का बहुत बड़ा हाथ था।

बा शुरू में कैसी थीं, आगे चलकर उनका स्वभाव कैसे बदला, आजादी की लड़ाई में उन्होंने कितनी बहादुरी दिखाई, बापू तथा दूसरों की कितनी सेवा की और नाम से कितनी दूर रहीं, इन सबका हाल आपको इस किताब में पढ़ने को मिलेगा। बापू ने बा के बारे में बहुत-कुछ लिखा है। उसीमें से चुनी हुई सामग्री लेकर, बापू की भाषा में ही, यह किताब तैयार की गई है।

आप पढ़ें और देखें कि सेवा के जोर पर आदमी कहां से कहां पहुंच जाता है।

—सम्पादक





बा

कस्तूरबा गांधी

: १ :

बचपन में विवाह

यह लिखते मन व्याकुल हो उठता है कि तेरह वर्ष की उम्र में मेरा विवाह हो गया। आज मेरी नजरों में बारह-तेरह बरस के बालक मौजूद हैं। उन्हें देखता हूं और अपने विवाह की याद करता हूं तो मुझे अपने ऊपर दया आती है और उन बालकों को इसके लिए बधाई देने को जी चाहता है कि वे मेरी-सी हालत से बच गये। तेरह बरस की उम्र में अपने व्याह के समर्थन में एक भी नैतिक दलील मुझे नहीं सूझती . . .

सगाइयां तो मेरी एक-एक करके तीन हुईं थीं। वे कब हुईं, इसका मुझे पता नहीं। दो कन्याएं क्रमशः मर गईं, ऐसा मुझसे कहा गया था। . . . तीसरी सगाई कोई सात बरस की उम्र में हुई होगी, ऐसा कुछ याद है।

हिंदू-संसार में विवाह कोई ऐसी-वैसी वस्तु नहीं

है। वर-कन्या के मां-बाप उसके पीछे मिट जाते हैं। पैसा और समय, दोनों बरबाद करते हैं। महीनों पहले तैयारियां होती हैं। कपड़े-गहने बनते हैं, बिरादरी-भोज के खर्च के हिसाब बनते हैं, पकवानों के प्रकारों की होड़-सी ोती है। गला हो या न हो, गीत गा-गाकर स्त्रियां अपना गला बैठा लेती हैं और बीमार तक पड़ जाती हैं। पड़ोसियों की शांति में खलल डालती हैं। बेचारे पड़ोसियों को खुद भी तो मौका पड़ने पर यही सब करना पड़ता है। इसलिए शोर-गुल, जूठ-जाठ और दूसरी गंदगियां सब चुप-चाप सह लेते हैं।···

मंडवे में बैठे, भांवर घूमे, कसार खाया-खिलाया और वर-वधू तभी से साथ रहने लगे। वह पहली रात! दो मासूम बच्चे अनजाने संसार-सागर में कूद पड़े। हम दोनों एक-दूसरे से डरते थे, ऐसा खयाल आता है। एक-दूसरे से शरमाते तो थे ही।

धीरे-धीरे हम एक-दूसरे को पहचानने लगे, बोलने लगे। हम दोनों हमउम्र थे; पर मैंने पति का अधिकार जताना शुरू कर दिया।

: २ :

पति का अधिकार

जिन दिनों मेरा विवाह हुआ, छोटे-छोटे निबंध—पैसे-पैसे या पाई-पाई के, सो याद नहीं पड़ता—छपा करते। इनमें दाम्पत्य प्रेम, कमखर्ची, बाल-विवाह इत्यादि विषयों की चर्चा रहा करती। इनमें से कोई-कोई निबंध मेरे हाथ पड़ता और उसे मैं पढ़ जाता। शुरू से यह मेरी आदत रही कि जो बात पढ़ने में अच्छी न लगती उसे भूल जाता और जो अच्छी लगती, उसके अनुसार आचरण करता। यह पढ़ा कि एक-पत्नी-व्रत का पालन करना पति का धर्म है। बस, यह मेरे हृदय में अंकित होगया। सत्य की लगन तो थी ही। इसलिए पत्नी को धोखा या भुलावा देने का तो अवसर ही न था। और यह भी समझ चुका था कि दूसरी स्त्री से संबंध जोड़ना पाप है। फिर कोमल उम्र में एक पत्नी-व्रत के भंग होने की संभावना भी कम रहती है।

परंतु इन अच्छे विचारों का एक बुरा नतीजा निकला। 'यदि मैं एक-पत्नी-व्रत का पालन करता हूं तो मेरी पत्नी को भी एक-पति-व्रत का पालन करना चाहिए।' इस विचार से मैं असहिष्णु-ईर्ष्यालु पति

बन गया। फिर 'पालन करना चाहिए' में से 'पालन करवाना चाहिए' इस विचार तक जा पहुंचा और यदि पालन करवाना हो तो फिर मुझे पत्नी की चौकीदारी करनी चाहिए। पत्नी की पवित्रता पर तो संदेह करने का कोई कारण न था; परंतु ईर्ष्या कहीं कारण देखने जाती है ! मैंने कहा—"पत्नी हमेशा कहां-कहां जाती है, यह जानना मेरे लिए जरूरी है। मेरी इजाजत लिये बिना वह कहीं नहीं जा सकती।" मेरा यह भाव मेरे और उनके बीच दुःखद झगड़े की जड़ बन बैठा। बिना इजाजत के कहीं न जा पाना तो एक तरह की कैद ही हो गई, परंतु कस्तूरबाई ऐसी मिट्टी की न बनी थीं, जो ऐसी कैद को बरदाश्त करतीं। जहां जी चाहे, मुझसे बिना पूछे जरूर चली जाती। ज्यों-ज्यों मैं उन्हें दबाता, त्यों-त्यों वह अधिक आजादी लेतीं और त्यों-ही-त्यों मैं और बिगड़ता। इस कारण हम बाल-दम्पती में अबोला रहना एक मामूली बात हो गई। कस्तूरबाई जो आजादी लिया करती, उसे मैं बिल्कुल निर्दोष मानता हूं। एक बालिका, जिसके मन में कोई बात नहीं है, देव-दर्शन को जाने के लिए अथवा किसीसे मिलने जाने के लिए क्यों ऐसा दबाव सहन करने लगे ? 'यदि मैं उसपर दबाव रखूं तो

फिर वह मुझपर क्यों न रखे ।' पर यह बात तो अब समझ में आती है । उस समय तो मुझे पतिदेव की सत्ता सिद्ध करनी थी ।

इससे पाठक यह न समझें कि हमारे इस गार्हस्थ्य-जीवन में कहीं मिठास थी ही नहीं । मेरी इस वक्रता का मूल था प्रेम——मैं अपनी पत्नी को आदर्श स्त्री बनाना चाहता था । मेरे मन में एकमात्र यही भाव रहता था कि मेरी पत्नी स्वच्छ हो, स्वच्छ रहे, मैं सीखूं सो सीखे, मैं पढ़ूं सो पढ़े और हम दोनों एक-मन दो-तन बनकर रहें ।

मुझे खयाल नहीं पड़ता कि कस्तूरबाई के भी मन में ऐसा भाव रहा हो। वह निरक्षर थीं । स्वभाव उनका सरल और स्वतंत्र था। वह परिश्रमी भी थीं; पर मेरे साथ कम बोला करतीं । अपने अज्ञान पर उन्हें असंतोष न था। अपने बचपन में मैंने कभी उनकी ऐसी इच्छा नहीं देखी कि 'वह पढ़ते हैं तो मैं भी पढ़ूं ।' इससे मैं मानता हूं कि मेरी भावना इकतरफा थी। मेरा विषय-सुख एक ही स्त्री पर अवलंबित था और मैं उस सुख की प्रतिध्वनि की आशा लगाये रहता था । प्रेम यदि इकतरफा भी हो तो वहां सर्वांश में दुःख नहीं हो सकता ।

मुझे कहना चाहिए कि मैं अपनी पत्नी से जहां-तक संबंध है, विषयासक्त था। स्कूल में भी उसका ध्यान आता और यह विचार मन में चला ही करता था कि कब रात हो और कब हम मिलें। वियोग असह्य हो जाता था। कितनी ही ऊट-पटांग बातें कह-कहकर मैं कस्तूरबाई को देर तक सोने न देता। इस आसक्ति के साथ ही यदि मुझमें कर्तव्यपरायणता न होती तो, मैं समझता हूं, या तो किसी बुरी बीमारी में फंसकर अकाल ही काल के मुंह में चला जाता अथवा अपने और दुनिया के लिए बोझ होकर वृथा जीवन व्यतीत करता होता। 'सुबह होते ही नित्यक्रम तो हर हालत में करने चाहिए, झूठ तो बोल ही नहीं सकते,' आदि अपने इन विचारों की बदौलत मैं अपने जीवन में कई संकटों से बच गया हूं।

: ३ :

ईश्वर ने बचाया

मैं ऊपर कह आया हूं कि कस्तूरबाई निरक्षर थीं। उन्हें पढ़ाने की मुझे बड़ी चाह थी। पर मेरी विषय-वासना मुझे कैसे पढ़ाने देती? एक तो मुझे उनकी मर्जी के खिलाफ पढ़ाना था, फिर रात में ही ऐसा मौका मिल सकता था। बुजुर्गों के सामने तो

पत्नी की तरफ देख तक नहीं सकते, बात करना तो दूर रहा! उस समय काठियावाड़ में घूंघट निकालने का निरर्थक और जंगली रिवाज था, आज भी थोड़ा-बहुत बाकी है। इस कारण पढ़ाने के अवसर भी मेरे प्रतिकूल थे। इसलिए मुझे कहना होगा कि युवावस्था में पढ़ाने की जितनी कोशिशें मैंने कीं वे सब प्रायः बेकार गईं और जब मैं विषय-निद्रा से जागा तब तो सार्वजनिक जीवन में पड़ चुका था। इस कारण अधिक समय देने योग्य मेरी स्थिति नहीं रह गई थी। शिक्षक रखकर पढ़ाने के मेरे यत्न भी विफल हुए। इसके फलस्वरूप कस्तूरबाई मामूली चिट्ठी-पत्री व गुजराती लिखने-पढ़ने से अधिक साक्षर न होने पाईं। यदि मेरा प्रेम विषय से दूषित न हुआ होता तो, मैं मानता हूं, वह विदुषी हो गई होतीं। उनके पढ़ने के आलस्य पर मैं विजय प्राप्त कर पाता, क्योंकि मैं जानता हूं कि शुद्ध प्रेम के लिए दुनिया में कोई बात असंभव नहीं।

इस तरह अपनी पत्नी के साथ विषय-रत रहते हुए भी मैं कैसे बहुत-कुछ बच गया, इसका एक कारण मैंने ऊपर बताया। इस सिलसिले में एक और बात कहने-जैसी है। सैकड़ों अनुभवों से मैंने

यह निचोड़ निकाला है कि जिसकी निष्ठा सच्ची है उसे खुद परमेश्वर ही बचा लेता है। हिंदू-संसार में जहां बाल-विवाह की घातक प्रथा है वहां उसके साथ ही उसमें से कुछ मुक्ति दिलानेवाला भी एक रिवाज है। बालक वर-वधू को मां-बाप बहुत समय तक एकसाथ नहीं रहने देते। बालपत्नी का आधे से ज्यादा समय मायके में जाता है। हमारे साथ भी ऐसा ही हुआ। अर्थात हम १३ और १८ साल की उम्र के दरमियान थोड़ा-थोड़ा करके तीन साल से अधिक साथ न रह सके होंगे। छः-आठ महीने रहना हुआ नहीं कि पत्नी के मां-बाप का बुलावा आया नहीं। उस समय तो वे बुलावे बड़े नागवार मालूम होते; परंतु सच पूछिए तो उन्हीं की बदौलत हम दोनों बहुत बच गये। फिर १८ साल की अवस्था में मैं विलायत गया। लंबे और सुंदर वियोग का अवसर आया। विलायत से लौटने पर भी हम एकसाथ तो छः महीने मुश्किल से रहे होंगे, क्योंकि मुझे राजकोट-बंबई बार-बार आना-जाना पड़ता था। फिर इतने में ही दक्षिण अफ्रीका का निमंत्रण आ पहुंचा और इस बीच तो मेरी आंखें बहुत-कुछ खुल भी चुकी थीं।

विलायत जाते समय जो वियोग-दुःख हुआ था, वह

दक्षिण अफ्रीका जाते हुए न हुआ; क्योंकि माताजी तो चल बसी थीं और मुझे दुनिया का और सफर का बहुत-कुछ अनुभव हो गया था। राजकोट और बंबई तो आया-जाया करता ही था। इस कारण अब की बार सिर्फ पत्नी का ही वियोग दुःखद था। विलायत से आने के बाद दूसरे एक बालक का जन्म होगया था। हम दंपती के प्रेम में अभी विषय-भोग का अंश तो था ही, फिर भी उसमें निर्मलता आने लगी थी। मेरे विलायत से लौटने के बाद हम बहुत थोड़ा समय एकसाथ रहे थे और मैं ऐसा-वैसा ही क्यों न हो, उसका शिक्षक बन चुका था। इधर पत्नी की बहुतेरी बातों में बहुत-कुछ सुधार करा चुका था और उन्हें कायम रखने के लिए भी साथ रहने की आवश्यकता हम दोनों को मालूम होती थी, परंतु अफ्रीका मुझे आकर्षित कर रहा था। उसने इस वियोग को सहन करने की शक्ति दे दी थी। 'एक साल के बाद तो हम मिलेंगे ही'—कहकर और दिलासा देकर मैंने राजकोट छोड़ा और बंबई पहुंचा।

: ४ :

लालच से बचे

१८९६ में जब मैं देश आया था तब भेंटें मिली

थीं; पर इस बार की भेंटों और सभाओं के दृश्यों से मैं घबराया। भेंट में सोने-चांदी की चीजें तो थीं ही; पर हीरे की चीजें भी थीं।

इन सब चीजों को स्वीकार करने का मुझे क्या अधिकार हो सकता है ? यदि मैं इन्हें मंजूर कर लूं तो फिर अपने मन को यह कहकर कैसे मना सकता हूं कि मैं पैसा लेकर लोगों की सेवा नहीं करता था ? मेरे मुवक्किलों की कुछ रकमों को छोड़कर बाकी सब चीजें मेरी लोक-सेवा के ही उपलक्ष्य में दी गई थीं। पर मेरे मन में तो मुवक्किल और दूसरे साथियों में कुछ भेद न था। मुख्य-मुख्य मुवक्किल सार्वजनिक काम में भी सहायता देते थे।

फिर उन भेंटों में एक पचास गिनी का हार कस्तूरबाई के लिए था। मगर उसे जो चीज मिली, वह भी थी तो मेरी ही सेवा के उपलक्ष्य में। अतएव उसे पृथक नहीं मान सकते थे।

जिस शाम को मुख्य-मुख्य भेंटें मिलीं, वह रात मैंने एक पागल की तरह जागकर काटी। कमरे में यहां-से-वहां टहलता रहा; परंतु गुत्थी किसी तरह सुलझती न थी। सैकड़ों रुपयों की भेंटें न लेना भारी पड़ रहा था; पर ले लेना उससे भी भारी

मालूम होता था।

मैं चाहे इन भेटों को पचा भी सकता; पर मेरे बालक और पत्नी? उन्हें तालीम तो सेवा की मिल रही थी। सेवा का दाम नहीं लिया जा सकता था, यह हमेशा समझाया जाता था। घर में कीमती जेवर आदि मैं नहीं रखता था। सादगी बढ़ती जाती थी। ऐसी अवस्था में सोने की घड़ियां कौन रखेगा? सोने की कंठी और हीरे की अंगूठियां कौन पहनेगा? गहनों का मोह छोड़ने के लिए मैं उस समय भी औरों से कहता रहता था। अब इन गहनों और जवाहरात को लेकर मैं क्या करूंगा।

मैं इस निर्णय पर पहुंचा कि वे चीजें मैं हरगिज नहीं रख सकता। पारसी रुस्तमजी इत्यादि को इन गहनों का ट्रस्टी बनाकर उनके नाम एक चिट्ठी तैयार की और सुबह स्त्री-पुत्रादि से सलाह करके अपना बोझ हलका करने का निश्चय किया।

मैं जानता था कि धर्मपत्नी को समझाना मुश्किल पड़ेगा। मुझे विश्वास था कि बालकों को समझाने में जरा भी दिक्कत पेश न आवेगी। अतः उन्हें वकील बनाने का विचार किया।

बच्चे तो तुरंत समझ गए। वे बोले, "हमें इन

गहनों से कुछ मतलब नहीं। ये सब चीजें हमें लौटा देनी चाहिए और यदि जरूरत होगी तो क्या हम खुद नहीं बना सकेंगे ?"

मैं प्रसन्न हुआ। "तो तुम बा को समझाओगे न ?" मैंने पूछा। "जरूर-जरूर। वह कहां इन गहनों को पहनने चली हैं! वह रखना चाहेंगी भी तो हमारे ही लिए न ? पर जब हमें ही इनकी जरूरत नहीं है तब फिर वह क्यों जिद करने लगीं ?"

परंतु काम अंदाज से ज्यादा मुश्किल साबित हुआ।

तुम्हें चाहे जरूरत न हो और लड़कों को भी न हो। बच्चों का क्या ? जैसा समझा दें समझ जाते हैं। मुझे न पहनने दो; पर मेरी बहुओं को तो जरूरत होगी। और कौन कह सकता है कि कल क्या होगा ? जो चीजें लोगों ने इतने प्रेम से दी हैं, उन्हें वापस लौटाना ठीक नहीं।" इस प्रकार वाग्धारा शुरू हुई और उसके साथ अश्रु-धारा आ मिली। लड़के दृढ़ रहे और मैं भला क्यों डिगने लगा ?

मैंने धीरे-से कहा—"पहले लड़कों की शादी तो हो लेने दो। हम बचपन में तो इनके विवाह करना चाहते ही नहीं हैं। बड़े होने पर जो इनका जी चाहे सो करें। फिर हमें क्या गहनों-कपड़ों की शौकीन बहुएं खोजनी

हैं ? फिर भी अगर कुछ बनवाना ही होगा तो मैं कहां चला गया हूं ?"

"हां, जानती हूं तुमको । वही न हो, जिन्होंने मेरे भी गहने उतरवा लिये हैं ! जब मुझे ही नहीं पहनने देते हो तो मेरी बहुओं को जरूर ला दोगे ! लड़कों को तो अभी से वैरागी बना रहे हो ! इन गहनों को मैं वापस नहीं देने दूंगी और फिर मेरे हार पर तुम्हारा क्या हक है ?"

"पर यह हार तुम्हारी सेवा की खातिर मिला है या मेरी ?" मैंने पूछा ।

"जैसा भी हो, तुम्हारी सेवा में क्या मेरी सेवा नहीं है? मुझसे जो रात-दिन मजूरी कराते हो, क्या वह सेवा नहीं है? मुझे रुला-रुलाकर जो ऐरे-गैरों को घर में रखा और मुझसे सेवा-टहल कराई, वह कुछ भी नहीं ?"

ये सब बाण तीखे थे । कितने ही तो मुझे चुभ रहे थे; पर गहने वापस लौटाने का मैं निश्चय कर चुका था । अंत को बहुतेरी बातों में मैं जैसे-तैसे सम्मति प्राप्त कर सका । १८९६ और १९०१ में मिली भेंटें लौटाईं । उनका ट्रस्ट बनाया गया और लोक-सेवा के लिए उसका उपयोग मेरी अथवा ट्रस्टियों की इच्छा के अनुसार होने की शर्त पर वह रकम बैंक में रखी गई । इन चीजों को

बेचने के निमित्त से मैं बहुत बार रुपया एकत्र कर सका हूं।

इस बात के लिए मुझे कभी पश्चात्ताप नहीं हुआ। आगे चलकर कस्तूरबाई को भी उसका औचित्य जंचने लगा। इस तरह हम अपने जीवन में बहुतेरे लालचों से बच गए।

मेरा यह निश्चित मत है कि लोक-सेवक को जो भेंटें मिलती हैं, वे उसकी निजी चीज कदापि नहीं हो सकतीं।

: ५ :

बा की सहनशीलता

जिस समय डरबन में मैं वकालत करता था, उस समय बहुत बार मेरे कारकुन मेरे साथ ही रहते थे। वे हिंदू और ईसाई होते थे अथवा प्रांतों के हिसाब से कहें तो गुजराती और मद्रासी। मुझे याद नहीं आता कि कभी उनके विषय में मेरे मन में भेद-भाव पैदा हुआ हो। मैं उन्हें बिलकुल घर के ही जैसा समझता ओर उसमें मेरी धर्मपत्नी की ओर से यदि कोई विघ्न उपस्थित होता तो मैं उससे लड़ता था। मेरा एक कारकुन ईसाई था। उसके मां-बाप पंचम जाति के थे। हमारे घर की बनावट पश्चिमी ढंग की थी। इस कारण कमरे

में मोरी नहीं होती थी---और न होनी चाहिए थी, ऐसा मेरा मत है। इस कारण कमरों में मोरियों की जगह पेशाब के लिए एक अलग बर्तन होता था। उसे उठाकर रखने का काम हम दोनों---दंपती---का था, नौकरों का नहीं। हां, जो कारकुन लोग अपनेको हमारा कुटुंबी-सा मानने लगते थे वे तो खुद ही उसे साफ कर भी डालते थे; लेकिन पंचम जाति में जन्मा यह कारकुन नया था। उसका बर्तन हमें ही उठाकर साफ करना चाहिए था, दूसरे बर्तन तो कस्तूरबाई उठाकर साफ कर देतीं, लेकिन इन भाई का बर्तन उठाना उन्हें असह्य मालूम हुआ। इससे हम दोनों में झगड़ा मचा। यदि मैं उठाता हूं तो उन्हें अच्छा नहीं मालूम होता था और खुद उनके लिए उठाना कठिन था। फिर भी आंखों से मोती की बूंदें टपक रही हैं, एक हाथ में बर्तन लिये अपनी लाल-लाल आंखों से उलहना देती हुई कस्तूरबाई सीढ़ियों से उतर रही हैं, वह चित्र मैं आज भी ज्यों-का-त्यों खींच सकता हूं।

परंतु मैं जैसा सहृदय और प्रेमी पति था वैसा ही निठुर और कठोर भी था। मैं अपनेको उसका शिक्षक मानता था। इससे अपने अंधप्रेम के अधीन हो मैं उसे खूब सताता था। इस कारण महज उसके बर्तन

उठा ले जाने से मुझे संतोष न हुआ। मैंने यह भी चाहा कि वह हँसते और हरखते हुए उसे ले जाय। इसलिए मैंने उसे डाँटा-डपटा भी। मैंने उत्तेजित होकर कहा—"देखो, यह बखेड़ा मेरे घर में नहीं चल सकेगा।"

मेरा यह बोल कस्तूरबाई को तीर की तरह लगा। उसने धधकते दिल से कहा—"तो लो, रखो यह अपना घर ! मैं चली।"

उस समय मैं ईश्वर को भूल गया था। दया का लेशमात्र मेरे हृदय में न रहा था। मैंने उसका हाथ पकड़ा। सीढ़ी के सामने ही बाहर जाने का दरवाजा था। मैं उस दीन अबला का हाथ पकड़कर दरवाजे तक खींचकर ले गया। दरवाजा आधा खोला होगा कि आंखों में गंगा-जमुना बहाती हुई कस्तूरबाई बोलीं, "तुम्हें तो कुछ शरम है नहीं; पर मुझे है। जरा तो लजाओ। मैं बाहर निकलकर आखिर जाऊं कहां ? मां-बाप भी यहां नहीं कि उनके पास चली जाऊं। मैं ठहरी स्त्री-जाति ! इसलिए मुझे तुम्हारी धौंस सहनी ही पड़ेगी। अब जरा शरम करो और दरवाजा बंद कर लो। कोई देख लेगा तो दोनों की फजीहत होगी।"

मैंने अपना चेहरा तो सुर्ख बनाये रखा; पर मन में शरमा जरूर गया। दरवाजा बंद कर दिया। जबकि पत्नी मुझे छोड़ नहीं सकती थी तब मैं भी उसे छोड़कर कहां जा सकता था? इस तरह हमारे आपस में लड़ाई-झगड़े कई बार हुए; परंतु उनका परिणाम सदा अच्छा ही निकला। उनमें पत्नी ने अपनी अद्भुत सहनशीलता के द्वारा मुझपर विजय प्राप्त की।

ये घटनाएं हमारे पूर्व-युग की हैं, इसलिए उनका वर्णन मैं आज अलिप्त-भाव से करता हूं। आज मैं तबकी तरह मोहांध पति नहीं हूं, न उसका शिक्षक ही हूं। यदि चाहें तो कस्तूरबाई आज मुझे धमका सकती हैं। हम आज एक-दूसरे के भुक्त-भोगी मित्र हैं, एक-दूसरे के प्रति निर्विकार रहकर जीवन बिता रहे हैं। कस्तूरबाई आज ऐसी सेविका बन गई हैं, जो मेरी बीमारियों में बिना प्रतिफल की इच्छा किये सेवा-शुश्रूषा करती हैं।

यह घटना १८९८ की है। उस समय मुझे ब्रह्मचर्य पालन के विषय में कुछ ज्ञान न था। वह समय ऐसा था जबकि मुझे इस बात का स्पष्ट ज्ञान न था कि पत्नी तो केवल सहधर्मिणी, सहचारिणी और सुख-दुःख की साथिन है। मैं यह समझकर बर्ताव करता था कि पत्नी विषय-

भोग की भाजन है, उसका जन्म पति की हर तरह की आज्ञाओं का पालन करने के लिए हुआ है।

किंतु १९०० ई० से मेरे इन विचारों में गहरा परिवर्त्तन हुआ। १९०६ में उसका परिणाम प्रकट हुआ। ज्यों-ज्यों मैं निर्विकार होता गया, त्यों-त्यों मेरा घर-संसार शांत, निर्मल और सुखी होता गया।

इस पुण्य-स्मरण से कोई यह न समझ ले कि हम आदर्श दंपती हैं, अथवा मेरी धर्म-पत्नी में किसी किस्म का दोष नहीं है, अथवा हमारे आदर्श अब एक हो गये हैं। कस्तूरबाई अपना स्वतंत्र आदर्श रखती हैं या नहीं यह तो वह बेचारी खुद भी शायद न जानती होंगी। बहुत संभव है कि मेरे आचरण की बहुतेरी बातें उन्हें अब भी पसंद न आती हों; परंतु अब हम उनके बारे में एक-दूसरे से चर्चा नहीं करते, करने में कुछ सार भी नहीं है। उन्हें न तो उसके मां-बाप ने शिक्षा दी है, न मैं ही, जब समय था, शिक्षा दे सका; परंतु उनमें एक गुण बहुत बड़े परिमाण में है, जो दूसरी कितनी ही हिंदू-स्त्रियों में थोड़ी-बहुत मात्रा में पाया जाता है। मन से हो या बे-मन से, जान में हो या अनजान में, मेरे पीछे-पीछे चलने में उन्होंने अपने जीवन की सार्थकता मानी है और स्वच्छ जीवन बिताने के मेरे प्रयत्न में कभी बाधा

नहीं डाली। इस कारण, यद्यपि हम दोनों की बुद्धिशक्ति में बहुत अंतर है, फिर भी मेरा खयाल है कि हमारा जीवन संतोषी, सुखी और ऊर्ध्वगामी है।...

: ६ :

बीमारी में बा की दृढ़ता

कस्तूरबाई पर तीन घातें हुईं और तीनों में वह महज घरेलू इलाज से बच गईं। पहली घटना तब की है जब सत्याग्रह-संग्राम चल रहा था। उसको बार-बार रक्त-स्राव हुआ करता था। एक डाक्टर मित्र ने नश्तर लगवाने की सलाह दी थी। बड़ी आनाकानी के बाद वह नश्तर के लिए राजी हुईं। शरीर बहुत क्षीण हो गया था। डाक्टर ने बिना बेहोश किये ही नश्तर लगाया। उस समय उन्हें दर्द तो बहुत हो रहा था; पर जिस धीरज से कस्तूरबाई ने उसे सहन किया उसे देखकर में दांतों तले अंगुली देने लगा। नश्तर अच्छी तरह लग गया। डाक्टर और उसकी धर्मपत्नी ने कस्तूरबाई की बहुत अच्छी तरह शुश्रूषा की।

यह घटना डरबन की है। दो या तीन दिन बाद डाक्टर ने मुझे निश्चित होकर जोहांसबर्ग जाने की छुट्टी दे दी। में चला भी गया; पर थोड़े ही दिन में समाचार मिला कि कस्तूरबाई का शरीर बिल्कुल सिम-

टता नहीं है और वह बिछौने से उठ-बैठ भी नहीं सकतीं। एक बार बेहोश भी हो गई थीं। डाक्टर जानते थे कि मुझसे पूछे बिना कस्तूरबाई को शराब या मांस——दवा अथवा भोजन में——नहीं दिया जा सकता था। सो उन्होंने मुझे जोहांसबर्ग टेलीफोन किया, "आपकी पत्नी को मैं मांस का शोरबा और 'बीफ टी' देने की जरूरत समझता हूं। मुझे इजाजत दीजिए।"

मैंने जवाब दिया, "मैं तो इजाजत नहीं दे सकता, परंतु कस्तूरबाई आजाद हैं। उनकी हालत पूछने लायक हो तो पूछ देखिए और वह लेना चाहें तो जरूर दीजिए।"

"बीमार से मैं ऐसी बातें नहीं पूछना चाहता। आप खुद यहां आ जाइए। जो चीजें मैं बताता हूं उनके खाने की इजाजत यदि आप न दें तो मैं आपकी पत्नी की जिंदगी के लिए जिम्मेदार नहीं हूं।"

यह सुनकर मैं उसी दिन डरबन रवाना हुआ। डाक्टर से मिलने पर उन्होंने कहा——"मैंने शोरबा पिलाकर आपको टेलीफोन किया था।"

मैंने कहा——"डाक्टर, यह तो विश्वासघात है।"

"इलाज करते वक्त मैं दगा-वगा कुछ नहीं सम-

झता। हम डाक्टर लोग ऐसे समय बीमार को व उसके रिश्तेदारों को धोखा देना पुण्य समझते हैं। हमारा धर्म तो है, जिस तरह हो सके रोगी को बचाना।" डाक्टर ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया।

यह सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ; पर मैंने शांति धारण की। डाक्टर मित्र थे, सज्जन थे। उनका और उनकी पत्नी का मुझपर अहसान था। पर मैं उनके इस व्यवहार को बरदाश्त करने के लिए तैयार न था।

"डाक्टर, अब साफ-साफ बातें कर लीजिए। बताइए आप क्या करना चाहते हैं? अपनी पत्नी को बिना उनकी इच्छा के मांस नहीं देने दूंगा। उसके न लेने से यदि वह मरती हों तो इसे सहन करने के लिए मैं तैयार हूं।"

डाक्टर बोले, "आपका यह सिद्धांत मेरे घर नहीं चल सकता। मैं तो आपसे कहता हूं कि आपकी पत्नी जबतक मेरे यहां है तबतक मैं मांस, अथवा जो कुछ देना मुनासिब समझूंगा, जरूर दूंगा। अगर आपको यह मंजूर नहीं है तो आप अपनी पत्नी को यहां से ले जाइए। अपने ही घर में मैं इस तरह उन्हें नहीं मरने दूंगा।"

"तो क्या आपका यह मतलब है कि मैं पत्नी को अभी ले जाऊं ?"

"मैं कहां कहता हूं कि ले जाओ ? मैं तो यह कहता हूं कि मुझपर कोई शर्त न लादो तो हम दोनों से इनकी जितनी सेवा हो सकेगी, करेंगे और आप सो जाइए । जो यह सीधी-सी बात समझ में न आती हो तो मुझे मजबूरी से कहना होगा कि आप अपनी पत्नी को मेरे घर से ले जाइए ।"

मेरा खयाल है कि मेरा लड़का उस समय मेरे साथ था । उससे मैंने पूछा तो उसने कहा—"हां, आपका कहना ठीक है । बा को मांस कैसे दे सकते हैं ?"

फिर मैं कस्तूरबाई के पास गया । वह बहुत कमजोर हो गई थी । उससे कुछ भी पूछना मेरे लिए दुखदाई था । पर अपना धर्म समझकर मैंने ऊपर की बातचीत उसे थोड़े में समझा दी । उसने दृढ़तापूर्वक जवाब दिया—"मैं मांस का शोरबा नहीं लूंगी । यह मनुष्य-देह बार-बार नहीं मिला करती । आपकी गोदी में मैं मर जाऊं तो परवाह नहीं; पर अपनी देह को मैं भ्रष्ट नहीं होने दूंगी ।"

मैंने उसे बहुतेरा समझाया और कहा कि तुम मेरे विचारों के अनुसार चलने के लिए बाध्य नहीं हो।

मैंने उसे यह भी बता दिया कि कितने ही अपने परिचित हिंदू भी दवा के लिए शराब और मांस लेने में परहेज नहीं करते, पर वह अपनी बात से बिल्कुल न डिगी और मुझसे कहा—"मुझे यहां से ले चलो।"

यह देखकर मैं बड़ा खुश हुआ; किंतु ले जाते हुए बड़ी चिंता हुई। पर मैंने तो निश्चय कर ही डाला और डाक्टर को भी पत्नी का निश्चय सुना दिया।

वह बिगड़कर बोले, "आप तो बड़े घातक पति मालूम होते हैं। ऐसी नाजुक हालत में उस बेचारी से ऐसी बात करते हुए आपको शर्म नहीं मालूम हुई? मैं कहता हूं कि आपकी पत्नी की हालत यहां से ले जाने लायक नहीं है। उसके शरीर की हालत ऐसी नहीं है कि जरा भी धक्का सहन कर सके। रास्ते में ही दम निकल जाय तो ताज्जुब नहीं! फिर भी आप हठ-धर्मी से न मानें तो आप जानें! यदि शोरबा न देने दें तो एक रात भी उन्हें अपने घर में रखने की जोखिम मैं नहीं लेता।"

रिमझिम-रिमझिम मेंह बरस रहा था। स्टेशन दूर न था। डरबन से फिनिक्स तक रेल के रास्ते और फिनिक्स से लगभग ढाई मील तक पैदल जाना था।

खतरा पूरा-पूरा था। पर मैंने यह सोच लिया कि ईश्वर सब तरह मदद करेगा। पहले एक आदमी को फिनिक्स भेज दिया। फिनिक्स में हमारे यहां एक हैमक था। हैमक कहते हैं जालीदार कपड़े की झोली अथवा पालने को। उसके सिरों को बांस से बांध देने पर बीमार उसमें आराम से झूला करता है। मैंने वेस्ट को कहलाया कि वह हैमक, एक बोतल गरम दूध, एक बोतल गरम पानी और छः आदमियों को लेकर फिनिक्स स्टेशन पर आजाय।

जब दूसरी ट्रेन चलने का समय हुआ तब मैंने रिक्शा मंगाई और उस भंयकर स्थिति में पत्नी को लेकर चल दिया।

पत्नी को हिम्मत दिलाने की मुझे जरूरत न पड़ी उल्टा मुझीको हिम्मत दिलाते हुए उसने कहा, "मुझे कुछ नुकसान न होगा, आप चिंता न करें।"

इस ठठरी में वजन तो कुछ रह ही नहीं गया था। खाना पेट में जाता ही न था। ट्रेन के डब्बे तक पहुंचने के लिए स्टेशन के लंबे-चौड़े प्लेटफार्म पर दूर तक चलकर जाना था; क्योंकि रिक्शा वहांतक पहुंच नहीं सकती थी। मैं सहारा देकर डब्बे तक ले गया। फिनिक्स स्टेशन पर तो वह झोली आ गई थी। उसमें हम

रोगी को आराम से घर तक ले गए । वहां केवल पानी के उपचार से धीरे-धीरे उसका शरीर बनने लगा। फिनिक्स पहुंचने के दो-तीन दिन बाद एक स्वामीजी हमारे यहां पधारे । जब हमारी हठ-धर्मी की कथा उन्होंने सुनी तो हमपर उनको बड़ा तरस आया और वह हम दोनों को समझाने लगे ।

मुझे जहांतक याद आता है, मणिलाल और रामदास भी उस समय मौजूद थे । स्वामीजी ने मांसाहार की निर्दोषता पर एक व्याख्यान झाड़ा, मनुस्मृति के श्लोक सुनाये । पत्नी के सामने जो इसकी बहस उन्होंने छेड़ी, यह मुझे अच्छा न मालूम हुआ; परंतु शिष्टाचार की खातिर मैंने उसमें दखल न दिया । मुझे मांसाहार के समर्थन में मनुस्मृति के प्रमाणों की आवश्यकता न थी । उनका पता मुझे था । मैं यह भी जानता था कि ऐसे लोग भी हैं, जो उन्हें प्रक्षिप्त समझते हैं । यदि वे प्रक्षिप्त न हों तो भी अन्नाहार-संबंधी मेरे विचार स्वतंत्र-रूप से बन चुके थे, पर कस्तूरबाई की तो श्रद्धा ही काम कर रही थी। वह बेचारी शास्त्रों के प्रमाणों को क्या जानती ? उसके नजदीक तो परंपरागत रूढ़ि ही धर्म था । लड़कों को अपने पिता के धर्म पर विश्वास था, इससे वे स्वामी के साथ विनोद करते

जाते थे। अंत को कस्तूरबाई ने यह कहकर इस बहस को बंद कर दिया, "स्वामीजी, आप कुछ भी कहिए, मैं मांस का शोरबा खाकर चंगी होना नहीं चाहती। अब बड़ी दया होगी, अगर आप मेरा सिर न खपावें। मैंने तो अपना निश्चय आपसे कह दिया। अब और बातें रह गई हों तो आप इन लड़कों के बाप से जाकर कीजिएगा।"

नश्तर लगाने के बाद यद्यपि कस्तूरबाई का रक्त-स्राव कुछ समय के लिए बंद हो गया था, तथापि बाद को वह फिर जारी होगया। अब की वह किसी तरह मिटाये न मिटा। पानी के इलाज बेकार साबित हुए। मेरे इन उपचारों पर पत्नी की बहुत श्रद्धा न थी; पर साथ ही तिरस्कार भी न था। दूसरा इलाज करने का भी उसे आग्रह न था। इसलिए जब मेरे दूसरे उपचारों में सफलता न मिली तब मैंने उसको समझाया कि दाल और नमक छोड़ दो। मैंने उसे समझाने की हद कर दी, अपनी बात के समर्थन में कुछ साहित्य भी पढ़कर सुनाया, पर वह नहीं मानती थी। अंत में उसने झुंझलाकर कहा—"दाल और नमक छोड़ने के लिए आपसे कोई कहे तो आप भी न छोड़ेंगे।"

इस जवाब को सुनकर, एक ओर जहां मुझे दुःख हुआ वहां दूसरी ओर हर्ष भी हुआ; क्योंकि इससे मुझे अपने प्रेम का परिचय देने का अवसर मिला। उस हर्ष से मैंने तुरंत कहा, "तुम्हारा खयाल गलत है। मैं यदि बीमार होऊं और मुझे यदि वैद्य इन चीजों को छोड़ने के लिए कहे तो जरूर छोड़ दूं। पर ऐसा क्यों? लो, तुम्हारे लिए मैं आज ही से दाल और नमक एक साल तक छोड़े देता हूँ। तुम छोड़ो या न छोड़ो, मैंने तो छोड़ दिया।"

यह देखकर पत्नी को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वह कह उठी, "माफ करो, आपका मिजाज जानते हुए भी यह बात मेरे मुंह से निकल गई। अब मैं तो दाल और नमक न खाऊंगी; पर आप अपना वचन वापस ले लीजिए। यह तो मुझे भारी सजा दे दी।"

मैंने कहा, "तुम दाल और नमक छोड़ दो तो बहुत ही अच्छा होगा, मुझे विश्वास है कि उससे तुम्हें लाभ ही होगा, परंतु मैं जो प्रतिज्ञा कर चुका हूँ वह नहीं टूट सकती। मुझे भी उससे लाभ ही होगा। हर किसी निमित्त से मनुष्य यदि संयम का पालन करता है तो इससे उसे लाभ ही होता है। इसलिए तुम इस बात पर जोर न दो; क्योंकि इससे मुझे भी अपनी

आजमाइश कर लेने का मौका मिलेगा और तुमने जो इनको छोड़ने का निश्चय किया है, उसपर दृढ़ रहने में भी तुम्हें मदद मिलेगी ।" इतना कहने के बाद तो मुझे मनाने की आवश्यकता रह नहीं गई थी ।

"आप तो बड़े हठी हैं, किसीका कहा मानना आपने सीखा ही नहीं ।" यह कहकर वह आंसू बहाती हुई चुप हो रही ।

इसको मैं पाठकों के सामने सत्याग्रह के तौर पर पेश करना चाहता हूं और कहना चाहता हूं कि मैं इसे अपने जीवन की मीठी स्मृतियों में गिनता हूं ।

इसके बाद तो कस्तूरबाई का स्वास्थ्य खूब सम्हलने लगा । अब यह नमक और दाल के त्याग का फल था, या उस त्याग से हुए भोजन के छोटे-बड़े परिवर्तनों का फल था, या उसके बाद दूसरे नियमों का पालन कराने की मेरी जागरूकता का फल था, या इस घटना के कारण जो मानसिक उल्लास हुआ उसका फल था, यह मैं नहीं कह सकता; परंतु यह बात जरूर हुई कि कस्तूरबाई का सूखा शरीर फिर पनपने लगा । रक्त-स्राव बंद हो गया और 'वैद्यराज' के नाम से मेरी साख कुछ बढ़ गई ।

: ७ :

बा की जेलयात्रा

मैं जानता था कि बहनों को जेल[1] भेजने का काम बहुत खतरनाक था। फिनिक्स में रहनेवाली अधिकतर बहनें मेरी रिश्तेदार थीं, वे सिर्फ मेरे लिहाज के कारण ही जेल जाने का विचार करें और फिर ऐन मौके पर घबराकर या जेल में जाने के बाद उकताकर माफी वगैरा मांग लें तो मुझे सदमा पहुंचे। साथ ही, इसकी वजह से लड़ाई के एकदम कमजोर पड़ जाने का डर भी था। मैंने तय किया था कि मैं अपनी पत्नी को तो हरगिज नहीं ललचाऊंगा। वह इन्कार भी नहीं कर सकती थीं और 'हां' कह दें तो उस 'हां' की भी कितनी कीमत की जाय, सो मैं कह नहीं सकता था। ऐसे जोखिम के काम में स्त्री स्वयं जो निश्चय करे, पुरुष को वही मान लेना चाहिए और कुछ भी न करे तो पति को उसके बारे में तनिक भी दुखी नहीं होना चाहिए, इतना मैं समझता था। इसलिए मैंने उनके साथ कुछ भी बात न करने का इरादा कर रखा था। दूसरी बहनों से मैंने चर्चा की। वे जेलयात्रा के लिए तैयार हुईं। उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया कि वे हर तरह का दुःख सहकर भी

१. दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के संबंध में।

अपनी जेलयात्रा पूरी करेंगी। मेरी पत्नी ने भी इन सब बातों का सार जान लिया और मुझसे कहा :

"मुझसे इस बात की चर्चा नहीं करते, इसका मुझे दुःख है। मुझमें ऐसी क्या खामी है कि म जेल नहीं जा सकती। मुझे भी उसी रास्ते जाना है, जिस रास्ते जाने की सलाह आप इन बहनों को दे रहे हैं।"

मैंने कहा, "मैं तुम्हें दुःख पहुंचा ही नहीं सकता। इसमें अविश्वास की भी कोई बात नहीं। मुझे तो तुम्हारे जाने से खुशी ही होगी; लेकिन तुम मेरे कहने से गई हो, इसका तो आभास तक मुझे अच्छा नहीं लगेगा। ऐसे काम सबको अपनी-अपनी हिम्मत से ही करने चाहिए। मैं कहूं और मेरी बात रखने के लिए तुम सहज ही चली जाओ और बाद में अदालत के सामने खड़ी होते ही कांप उठो और हार जाओ या जेल के दुःख से ऊब उठो तो इसे मैं अपना दोष तो नहीं मानूंगा; लेकिन सोचो कि मेरा क्या हाल होगा! मैं तुमको किस तरह रख सकूंगा और दुनिया के सामने किस तरह खड़ा रह सकूंगा? बस, इस भय के कारण ही मैंने तुम्हें ललचाया नहीं।"

मुझे जवाब मिला, "मैं हारकर छूट आऊं तो मुझे मत रखना। मेरे बच्चे तक सह सकें, आप सब

सहन कर सकें और अकेली मैं ही न सह सकूं, ऐसा आप सोचते कैसे हैं ? मुझे इस लड़ाई में शामिल होना ही होगा ।"

मैंने जवाब दिया, "तो मुझे तुमको शामिल करना ही होगा । मेरी शर्त्त तो तुम जानती ही हो। मेरे स्वभाव से भी तुम परिचित हो । अब भी विचार करना हो तो फिर विचार कर लेना और भली-भांति सोचने के बाद तुम्हें यह लगे कि शामिल नहीं होना है तो समझना, तुम इसके लिए आजाद हो । साथ ही, यह भी समझ लो कि निश्चय बदलने में अभी शरम की कोई बात नहीं है ।"

मुझे जवाब मिला, "मुझे बिचार-विचार कुछ भी नहीं करना है । मेरा निश्चय ही है ।"

: ८ :

बा : मेरी मां

एक आदमी ने भूल से उन्हें (बा को) मेरी मां समझ लिया था । यह भूल हमारे और बा के बीच न सिर्फ क्षम्य ही है, बल्कि तारीफ की बात है; क्योंकि बहुत वर्षों से वह हम दोनों की सलाह से मेरी पत्नी नहीं रह गई हैं। चालीस साल हुए मैं बेमां-बाप का हो गया और तीस वर्षों से वह मेरी मां का

काम कर रही हैं। वह मेरी मां, सेविका, रसोइया, बोतल धोनेवाली, सबकुछ रही हैं। अगर वह इतने सवेरे आपके दिये सम्मान में हिस्सा लेने आती तो मैं भूखा ही रह जाता और मेरे शारीरिक सुख की कोई परवाह न करता। इसलिए हमने आपस में यह समझौता कर लिया है कि सभी सम्मान मुझे मिलें और सभी मेहनत उन्हें करनी पड़े। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि उनके बारे में जो-जो अच्छी-अच्छी बातें आपने कहीं हैं वे मेरे कोई साथी उनसे कह देंगे और उनकी गैरहाजिरी के लिए आप मेरा जवाब मंजूर कर लेंगे।

: ९ :

राजकोट की लड़ाई

बा राजकोट की लड़ाई में शामिल हुईं, इस पर कुछ न लिखने का मेरा इरादा था; लेकिन उनके इस लड़ाई में शामिल होने पर जो थोड़ी निष्ठुर टीकाएं हुई हैं, वे खुलासा चाहती हैं। मुझे तो कभी यह सूझा ही न था कि बा को इस लड़ाई में शरीक होना चाहिए। इसकी खास वजह तो यह थी कि इस तरह की मुसीबतों के लिए वह बहुत बूढ़ी हो चुकी थीं। लेकिन बात कितनी ही अनोखी क्यों न मालूम हो, टीका-

कारों को मेरे इस कथन पर इतना विश्वास तो रखना चाहिए कि अगरचे बा अनपढ़ थीं, फिर भी कई सालों से उन्हें इस बात की पूरी-पूरी आजादी थी कि वह जो करना चाहें, करें। क्या दक्षिण अफ्रीका में और क्या हिंदुस्तान में, जब-जब भी वह किसी लड़ाई में शरीक हुई हैं, अपने आप, अपनी आंतरिक भावना से ही। इस बार भी ऐसा ही हुआ था। जब उन्होंने मणिबहन की गिरफ्तारी की बात सुनी उनसे न रहा गया और उन्होंने मुझसे लड़ाई में शामिल होने की इजाजत मांगी। मैंने कहा, "तुम अभी बहुत ही कमजोर हो।" दिल्ली में कुछ ही दिन पहले वह अपने नहाने के कमरे में बेहोश हो गई थीं। उस वक्त देवदास ने हाजिरखयाली से काम न लिया होता तो वह उसी समय स्वर्गधाम पहुंच गई होतीं। लेकिन बा ने जवाब दिया, "शरीर की मुझे परवाह नहीं।" इसपर मैंने सरदार से पुछवाया। वह भी इजाजत देने के लिए बिल्कुल तैयार न थे।

लेकिन फिर तो वह पसीजे। रेजीडेंट की सूचना से ठाकुरसाहब ने जो वचन-भंग किया था, उसके कारण मुझे होनेवाले क्लेश के वह साक्षी थे। कस्तूरबाई राज-कोट की बेटी ठहरीं। इसलिए उन्होंने अंतर की आवाज

सुनी । उन्होंने महसूस किया कि जब राजकोट की बेटियां राज्य के पुरुषों और स्त्रियों की आजादी के लिए जूझ रही हों तब वह चुप बैठ ही नहीं सकतीं।

उनमें एक गुण बहुत बड़ा था। हरएक हिंदू-पत्नी में वह कमोबेश होता ही है । इच्छा या अनिच्छा से अथवा जाने अनजाने भी वह मेरे पद-चिन्हों पर चलने में धन्यता अनुभव करती थीं ।...

: १० :

बा की मृत्यु

"बा की मृत्यु[१] भव्य थी । मुझे उसका बहुत हर्ष है। जो दुःख है वह तो अपने स्वार्थ के लिए । ६२ वर्ष के साथ के बाद उसका साथ छुटना चुभता था । कितनी ही कोशिश करूं, अभी मैं उन स्मरणों को मन से नहीं निकाल सकता ।

बा के जाने का धक्का अभी तक दूर नहीं हुआ। बुद्धि कहती है कि इससे अच्छी मृत्यु बा के लिए हो नहीं सकती थी। मुझे हमेशा यह डर रहता था कि बा अगर मेरे पीछे रह जायगी तो अच्छा नहीं । मेरे हाथों ही चली जाय तो मुझे अच्छा लगे, क्योंकि बा

[१] आगाखां-महल के बंदी-वास में २२ फ़रवरी, १९४४ को उनका देहांत हुआ ।

मुझमें समा गई थी। मैं शोक में पड़ा रहता हूं, ऐसा भी नहीं है। बा का विचार करता रहता हूं, वह भी नहीं। क्या है, उसका मैं वर्णन नहीं कर सकता।

उसका जाना एक कल्पना-सा लगता है। मैं उसके लिए तैयार था, मगर जब वह सचमुच ही चली गई तो मुझे कल्पना से अधिक एक नई बात लगी। मैं अब सोचता हूं कि बा के बिना मैं अपने जीवन को ठीक-ठीक बैठा ही नहीं सकता हूं।

कौन है ऐसी स्त्री, जो इस तरह अपने पति की गोद में प्राण दे? अंतिम समय में उसने मुझे बुलाया तब मैं नहीं जानता था कि वह जा रही है, और मैं घूमने नहीं चला गया था, वह भी ईश्वर का ही काम था। पेनिसिलीन के कारण ही मैं रुका। मृत्यु-शय्या पर पड़ी हुई को इंजेकशन क्या देना था? मगर जब बा के पास बैठा तो समझ गया कि बा अब जाती है। बा के नाम से विश्वविद्यालय खोलना मैं एक निकम्मी बात समझता हूं। उसे विश्वविद्यालय में रस कहां था, चर्खा इत्यादि में तो वह रस लेती थी। यह फंड[1] हम दोनों के निमित्त इकट्ठा हो तो लोगों पर बोझ नहीं

---

[1] बा के स्मारक के लिए फंड इकट्ठा करना था। बापू की जयंती पर ७५ लाख रुपया इकट्ठा करने की बात पहले से चल रही थी।

पड़ेगा। बा का हिस्सा मेरी जयंती में हमेशा रहा है। इस फंड का उपयोग चर्खा और ग्रामोद्योग के लिए होगा।

: ११ :
बा के अद्भुत गुण

बा का जबरदस्त गुण महज अपनी इच्छा से मुझमें समा जाने का था। यह कुछ मेरे आग्रह से नहीं हुआ था, लेकिन समय पाकर बा के अंदर ही इस गुण का विकास हो गया था। मैं नहीं जानता था कि बा में यह गुण छिपा हुआ था। मेरे शुरू-शुरू के अनुभव के अनुसार बा बहुत हठीली थीं। मेरे दबाव डालने पर भी वह अपना चाहा ही करतीं। इसके कारण हमारे बीच थोड़े समय की या लंबी कड़ुवाहट भी रहती, लेकिन जैसे-जैसे मेरा सार्वजनिक जीवन उज्ज्वल बनता गया, वैसे-वैसे बा खिलती गईं और पुख्ता विचारों के साथ मुझमें यानी मेरे कामों में समाती गईं। जैसे-जैसे दिन बीतते गए, मुझमें और मेरे कामों—सेवा में—भेद न रह गया। बा धीमे-धीमे उसमें तदाकार होने लगीं। शायद हिंदुस्तान की भूमि को यह गुण अधिक-से-अधिक प्रिय है। कुछ भी हो, मुझे तो बा की उक्त भावना का यह मुख्य कारण मालूम होता है।

बा में यह गुण पराकाष्ठा को पहुंचा, इसका कारण हमारा ब्रह्मचर्य था। मेरी अपेक्षा बा के लिए यह बहुत ज्यादा स्वाभाविक सिद्ध हुआ। शुरू में बा को इसका कोई ज्ञान भी न था। मैंने विचार किया और बा ने उसको उठाकर अपना बना लिया। परिणामस्वरूप हमारा संबंध सच्चे मित्र का बना। मेरे साथ रहने में बा के लिए सन् १९०६ से, असल में सन् १९०१ से, मेरे काम में शरीक हो जाने के सिवा या उससे भिन्न और कुछ रह ही नहीं गया था। वह अलग रह नहीं सकती थीं। अलग रहने में उन्हें कोई दिक्कत न होती, लेकिन उन्होंने मित्र बनने पर भी स्त्री के नाते और पत्नी के नाते मेरे काम में समा जाने में ही अपना धर्म माना। इसमें बा ने मेरी निजी सेवा को अनिवार्य स्थान दिया। इसलिए मरते दम तक उन्होंने मेरी सुविधा की देख-रेख का काम छोड़ा ही नहीं।

: १२ :

वह मुझमें समा गई

अगर मैं अपनी पत्नी के बारे में अपने प्रेम और अपनी भावना का वर्णन कर सकूं तो हिंदूधर्म के बारे में अपने प्रेम और अपनी भावनाओं को मैं प्रकट कर सकता हूं। दुनिया की दूसरी किसी भी स्त्री के मुकाबले में

मेरी पत्नी मुझपर ज्यादा असर डालती है।

यद्यपि अपनी मृत्यु के कारण बा सतत वेदना से छूट गई हैं, इसलिए उनकी दृष्टि से मैंने उनकी मौत का स्वागत किया है, तो भी इस क्षति से मुझको जितना दुःख होने की कल्पना मैंने की थी, उससे अधिक दुःख हुआ है। हम असाधारण दंपती थे। १९०६ में एक-दूसरे की स्वीकृति से और अनजानी आजमाइश के बाद हमने आत्म-संयम के नियम को निश्चित रूप से स्वीकार किया था। इसके परिणाम-स्वरूप हमारी गांठ पहले से कहीं ज्यादा मजबूत बनी और मुझे उससे बहुत आनंद हुआ। हम दो भिन्न व्यक्ति नहीं रह गए। मेरी वैसी कोई इच्छा नहीं थी, तो भी उन्होंने मुझमें लीन होना पसंद किया। फलतः वह सचमुच ही मेरी अर्द्धांगिनी बनीं। वह हमेशा से बहुत दृढ़ इच्छा-शक्तिवाली स्त्री थीं, जिनको अपनी नवविवाहित दशा में मैं भूल से हठीली माना करता था; लेकिन अपनी दृढ़ इच्छा-शक्ति के कारण वह अनजाने ही अहिंसक असहयोग की कला के आचरण में मेरी गुरू बन गईं। आचरण का आरंभ मेरे अपने परिवार से ही किया। १९०६ में जब मैंने उसे राज-नीति के क्षेत्रों में दाखिल किया तब उसका अधिक

विशाल और विशेष रूप से योजित 'सत्याग्रह' नाम पड़ा। दक्षिण अफ्रीका में जब हिंदुस्तानियों की जेल-यात्रा शुरू हुई तब श्रीमती कस्तूरबा भी सत्याग्रहियों में एक थीं। मेरे मुकाबले शारीरिक पीड़ा उनको ज्यादा हुई। वह कई बार जेल जा चुकी थीं, फिर भी इस बार के इस कैदखाने में, जिसमें सभी तरह की सहूलियतें मौजूद थीं उनको अच्छा नहीं लगा। दूसरे, बहुतों के साथ मेरी और फिर तुरंत ही उनकी जो गिरफ्तारी हुई, उससे उन्हें जोर का आघात पहुंचा और उनका मन खट्टा हो गया। वह मेरी गिरफ्तारी के लिए बिल्कुल तैयार नहीं थीं। मैंने उन्हें विश्वास दिलाया था कि सरकार को मेरी अहिंसा पर भरोसा है और जबतक मैं खुद गिरफ्तार होना न चाहूं वह मुझे पकड़ेगी नहीं। सचमुच उनके ज्ञानतंतुओं को इतने जोर का धक्का बैठा कि उनकी गिरफ्तारी के बाद उन्हें दस्त की सख्त शिकायत हो गई। अगर उस समय डा० सुशीला नैयर ने, जो उनके साथ ही पकड़ी गई थीं, उनका इलाज न किया होता तो मुझसे इस जेल में आकर मिलने से पहले ही उनकी देह छूट चुकी होती।

---

[1] बा ९ अगस्त, १९४२ को गिरफ्तार हुई थीं और आग़ाख़ां-महल में बंदी बनाकर रखी गई थीं।

मेरी हाजिरी से उन्हें आश्वासन मिला और बिना किसी खास इलाज के दस्त की शिकायत दूर हो गई। लेकिन मन जो खट्टा हुआ था सो खट्टा ही बना रहा। इसकी वजह से उनके स्वभाव में चिड़चिड़ापन आगया और इसीका नतीजा था कि आखिर कष्ट सहते-सहते क्रम-क्रम से उनका देहपात हुआ।[1]

[1] भाई वेवळ के नाम पत्र।

संतवाणी (वियोगी हरि)	१॥)
प्रार्थना ,,	॥)
अयोध्याकाण्ड ,, ,,	१)
भागवत-धर्म (ह. उ.)	६॥)
श्रेयार्थी जमनालालजी ,,	६॥)
स्वतन्त्रता की ओर ,,	४)
बापू के आश्रम में ,,	१)
मानवताके झरने (माव.)	१॥)
बापू (घ. बिड़ला)	२)
रूप और स्वरूप ,,	॥=)
डायरी के पन्ने ,,	१)
ध्रुवोपाख्यान ,,	।)
स्त्री और पुरुष (टाल्स्टाय)	१)
मेरी मुक्ति की कहानी ,,	१॥)
प्रेम में भगवान ,,	२)
जीवन-साधना ,,	१।)
कलवार की करतूत ,,	।)
हमारे जमाने की गुलामी ,,	॥।)
बुराई कैसे मिटे ? ,,	१)
बालकों का विवेक ,,	॥।)
हम करें क्या ? ,,	३॥)
धर्म और सदाचार ,,	१।)
अंधेरे में उजाला ,,	१॥)
कल्पवृक्ष (वा० अग्रवाल)	२)
हिमालय की गोद में	२)
साहित्य और जीवन	२)
कब्ज (म० प्र० पोद्दार)	१)
राजनीति प्रवेशिका	१)
जीवन-संदेश (ख.जिब्रान)	१।)
अशोक के फूल	३)
लोकमान्य तिलक	२॥)
हमारा कानून	५)
क्रांति की भावना	२॥)
तुकारामगाथा-सार	१॥)
कित्तूर की रानी	२)
जीवन-प्रभात	५)
कां० का इतिहास २ भाग	२०)
पंचदशी (सं० य० जैन)	१॥)
सप्तदशी	२)
रीढ़ की हड्डी	१॥)
अमिट रेखायें	३)
एक आदर्श महिला	१)
राष्ट्रीय गीत	।)
तामिल-वेद (तिरुकुरल)	१॥)
आत्म-रहस्य	३)
थेरी-गाथाएं	१॥)
बुद्ध और बौद्ध साधक	१॥)
जातक-कथा (आनंद कौ.)	२॥)
हमारे गांव की कहानी	१॥)
अन्नों की खेती	२)
दलहन की खेती	१)
साग-भाजी की खेती	३)
पशुओं का इलाज (प.प्र.)	॥)
रामतीर्थ-संदेश (३भाग)	१=)
रोटी का सवाल (क्रोपा०)	३)
नवयुवकों से दो बातें ,,	।=)
पुरुषार्थ (डा.भगवान्दास)	६)
काश्मीर पर हमला	२)
शिष्टाचार	॥)
भारतीय संस्कृति	३॥)
आधुनिक भारत	५)
फलों की खेती	२॥)
मैं तन्दुरुस्त हूं या बीमार	॥।)
नवजागरण का इतिहास	३)
गांधीजी की छत्रछाया में	२॥)
भागवत-कथा	३॥)
जय अमरनाथ	१॥)
प्रगति के पथ पर ६ पुस्तकें	१॥)
संस्कृत-साहित्य-सौरभ (२८ पुस्तकें) प्रति पुस्तक	।=)
समाज-विकास-माला (१८ पुस्तकें) प्रति पुस्तक	।=)

समाज-विकास-माला की पुस्तकें

१. बद्रीनाथ
२. जंगल की सैर
३. भीष्म पितामह
४. शिवि और दधीचि
५. विनोबा और भूदान
६. कबीर के बोल
७. गांधीजी का विद्यार्थी-जीवन
८. गंगाजी
९. गौतम बुद्ध
१०. गांव सुखी, हम सुखी
११. निषाद और शबरी
१२. कितनी जमीन ?
१३. ऐसे थे सरदार
१४. चैतन्य महाप्रभु
१५. कहावतों की कहानियां
१६. सरल व्यायाम
१७. द्वारका
१८. बापू की बातें
१९. बाहुबली और नेमिनाथ
२०. तन्दुरुस्ती हजार नियामत
२१. बीमारी कैसे दूर करें ?
२२. माटी की मूरत जागी
२३. गिरिधर की कुंडलियां
२४. रहीम के दोहे
२५. गीता-प्रवेशिका
२६. तुलसी-मानस-मोती
२७. दादू की वाणी
२८. नजीर की नज्में
२९. संत तुकाराम
३०. हजरत उमर
३१. बाजीप्रभु देशपाण्डे
३२. तिरुवल्लुवर
३३. कस्तूरबा गांधी
३४. शहद की खेती
३५. कावेरी
३६. तीर्थराज प्रयाग
३७. तेल की कहानी
३८. हम सुखी कैसे रहें ?
३९. गो-सेवा क्यों ?
४०. कैलास-मानसरोवर
४१. अच्छा किया या बुरा ?
४२. नरसी महेता
४३. पंढरपुर
४४. ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती
४५. संत ज्ञानेश्वर
४६. धरती की कहानी
४७. राजा भोज
४८. ईश्वर का मंदिर
४९. गांधीजी का संसार-प्रवेश
५०. ये थे नेताजी
५१. रामेश्वरम्
५२. कब्रों का विलाप
५३. रामकृष्ण परमहंस
५४. समर्थ रामदास
५५. मीरा के पद
५६. मिलजुल कर काम करो
५७. काला पानी
५८. पावभर आटा

मूल्य प्रत्येक का छः आना

सस्ता साहित्य मण्डल

३३

छः आना